मुखपृष्ठ
साहित्यकारों की वेबपत्रिका
साहित्यसुधा
वर्ष: 4, अंक 68, सितम्बर(प्रथम), 2019

कवि जयप्रकाश मानस की डायरी

'सुबह' भाषा में सबसे बड़ा शब्द है

22 मार्च 2014

बाज़ार में सब्जी खरीद रहा हूँ । एकाएक कुछ फुटकर विचार आ रहे हैं मन में । घर लौटकर लिख लेता हूँ किसी कागज़ पर । रख लेता हूँ संभाल कर भी । फिर कभी सिलसिलेवार इन्हें जमाऊँगा । कुछ और भी तक अनुभव हो जाये :

लेखक का पहला सपना प्रकाशन, प्रशंसा और पुरस्कार होता है और रचनाकार का परिवर्तन ।

लेखक का भ्रम लेखक ने शायद यह मान रखा है कि जरुरी परिवर्तन के लिए उसका काम मात्र समाज को विचार प्रदान करना है । शेष सामाजिक संघर्षों से उसका कोई लेना-देना नहीं । यानी वह सुविधाभोगी अधिक संघर्षशील कम ही है ।

बदलाव लेखक जहां बदलाव की उम्मीद करता है, वहां जब तक उसका साहित्य पहुंचता ही नहीं तो बदलाव कैसे संभव है ।

क्या यह बिलकुल झूठ है - बड़ी से बड़ी साहित्यिक पत्रिका की साख आम जनता में नहीं के बराबर है ।

23 मार्च 2014

नइ बोलय करौंदा रिसाय हावय का

बचपन में माँ जिस दिन करौंदे की चटनी बनाती थी, उस दिन मैं कुछ अधिक ही डकार जाता था । थोड़ी सी धनिया या पुदीने की पत्ती, कुछ हरी मिर्च और नमक मिला दो, बस्स... फिर देखो उसका रंग । बाज़ार में करौंदे देखकर उसकी याद आ गई ।

हिंदी में करौंदा । करमर्द, सुखेण, कृष्णापाक फल संस्कृत में । मराठियों के लिए मरवन्दी तो गुजरातियों के लिए करमंदी । बंगाली दादा कहे करकचा, तेलुगु भाई बाका। अंगरेज़ों के लिए जस्मीड फ्लावर्ड ।

करौंदे में जाने कितने गुन ! फलों में अनोखा । करोंदा भूख को बढ़ाता है, पित्त को शांत करता है, प्यास रोकता है और दस्त को बंद करता है । पका करौंदा यानी वातहारी । आम घरों में करौंदा सब्जी, चटनी, मुरब्बे और अचार के लिए मशहूर । रस हाय ब्लड प्रेशर को कम करने में कामयाब । महिलाओं की मुख्य समस्या 'रक्तहीनता' (एनीमिया) से छूटकारा दिलाने में विश्वसनीय ।

पातालकोट (मध्यप्रदेश) में आदिवासी भाई करौंदा की जड़ों को पानी के साथ कुचलकर बुखार होने पर शरीर पर लेपित करते है और गर्मियों में लू लगने और दस्त या डायरिया होने पर इसके फ़लों का जूस तैयार कर पिलाया जाता है, कहते हैं तुरंत आराम मिलता है ।

भारतीय मूल का यह एक बहुत ही सहिष्णु, सदाबहार, कांटेदार झाड़ीनुमा पौधा है । इसके फूल सफेद होते हैं तथा फूलों की गन्ध जूही के समान होते है। माँ के हाथों बनी करौंदा चटनी को याद करते-करते कवि त्रिलोचन की वह नायाब पंक्तियाँ भी बरबस याद आ रही हैं :

सघन अरण्यानी
कंटकित करौंदे की
फलों भरी
फल भी छोटे, मझौले
और बड़े
अलग अलग पेडों में
लगे हुए।

बड़े फल साथियों की राय से
हम सब ने तोड लिए
घर के लिए
प्रसंस्करण दक्ष हाथ करेंगे।

बड़े करौंदे ही करौंदे कहलाते हैं
छोटे और मझोले/ करौंदी
मशहूर हैं।

चटनी, अचार

नाना रकम और स्वाद के

अपनों को उनकी

रुचि जान कर देते हैं।

मेरे जनपद में प्रेमिका को प्रेमी जब करौंदा कहकर पुकारता है तो उसका स्वाद केवल मेरे जनपद के प्रेमी-प्रेमिका ही बूझ पाते हैं । ऐसे में भैय्यालाल हेड़ाऊ, अनुराग ठाकुर जैसे छत्तीसगढ़ के लोककलाकारों का स्वर मेरे भीतर उभरने लगता है :

आँखी में रतिहा बिताए हावे का

आँखी में रतिहा बिताए हावे का

कैसे संगी नई बोलय करौंदा रिसाय हावे का

ये रिसाय हावे का हां रिसाय हावे का

'साल करोंटा (करवट) ले गई, राम बोध गये टेक, बेर करौंदा जा कहें, मरन न दे हों एक'। बुंदेलखंड में ये पंक्तियाँ 19 शताब्दी के अकाल के हालात में गुनगुनाई गयी थीं। भई, करौंदा को लोक-समाज भला भूल भी कैसे सकता है! क्या मैं भूला पा रहा हूँ - माँ को और उसे भी....!!

27 मई 2014

नदी है तो

नदी केवल धोती है । नदी केवल बोती है । नदी केवल खोती है । नदी केवल रोती है । नदी केवल सोती नहीं !

नदी और नींद का मेल कहाँ ! नींद एक नदी है पर नदी कोई नींद नहीं । नदी सदा जागती है । वह सदा जगाती है । जगना उसका धर्म है । जगाना उसका कर्म । नदी की नीयत में दो ही बातें हैं - कर्म और धर्म । जो उसका कर्म है वही उसका धर्म । नदी का यही सच्चा मर्म ।

नदी एक ताल है । छंद गति लय भी । सच कहो तो नदी जैसे जीवन का संगीत । जीवन कभी भी थमता कहाँ ! बिन गाये नदी का मन भी रमता कहाँ ! न थमना, केवल रमना ही नदी का जीवन है । बहते ही रहना, कुछ कहते रहना ही जीवन की नदी है ।

दो तटों को मिलाना । फिर स्वयं खिलखिलाना । पास-पड़ौस को बुलाना । कानों में बुदबुदाना । फिर मेले सजाना । नदी की ही रीति । नदी की ही नीति । नदी कभी अपना रीत नहीं छोड़ती । नदी भूले से भी प्रीत नहीं तोड़ती । जोड़ती-जोड़ती सिर्फ़-सिर्फ़ जोड़ती ।

नदी है तो जागती रहती हैं मछलियाँ । नदी है तो मल्लाह की रोती नहीं पुतलियाँ । नदी है तो चमकती रहती है डोंगियाँ ।

28 मई 2014

धरती पर सबसे बड़ी सफाई कामगार

माटी की सिपाही हैं चींटियाँ । हम नमक, गुड़, गोरस या मिठाई, जो भी हों, एक दिन सब चट कर जायेगी चींटियाँ । चींटियों का काम है धरती पर सब कुछ चट कर जाना । किन्हें ? उन्हें, जो संभाली जाती नहीं । खुली पड़ी रहती हैं कहीं भी । धरती पर अकारज । जैसे कंजूस की तिजौरी में उदास पड़ा धन ।

चींटियाँ धरती पर सबसे बड़ी सफाई कामगार हैं । उन्हें कुछ भी व्यर्थ पड़ा भाता नहीं । वे कभी किसी को नहीं रोकती । न टोकती । बस चिढ़ती हैं कि इतना ना इकट्ठा करो कि वह न आपके काम आये और दूसरों को भी सताये ।

बहुत लघु जीव है चींटियां पर वे पर्वत भी हज़म कर जातीं हैं । उनकी दाँत बहुत तेज़ हैं । हमारी लोभ और लाभ के नुकीले डाढ़ों से भी । वे जड़ से फूल तक सब चाट जाती हैं ।

चींटियों की पहुँच असीमित है । चींटिया हमसे पहले भी उपस्थित थीं । वे ही रहेंगी हमारे सौ-सौ जनम के बाद । माटी के भीतर । माटी के संसार में । व्यर्थ को माटी में बदलते रहने के लिए ।

चींटियों को ऊँची आवाज़ पसंद नहीं । चींटियों को यूँ किसी की गरमी बर्दास्त नहीं । प्यार से उन्हें स्पर्श कर लें - लजा-लजा जाती हैं । मन ही मन गुनगुनाती हैं । कहतीं हैं जैसे - प्यार कोई मौन गीत है । बेआवाज़ संगीत है ।

माटी की चींटियाँ सपनों को भी लपक लें, इससे पहले हम अपनी-अपनी नींदों को सहेज लें । समेट लें । फिर उन्हें कोई एतराज़ नहीं ।

29 मई 2014

सुबह भाषा में सबसे बड़ा शब्द है

एक उदास रात का शोर अर्थात् मुस्कान का ही भोर । उदासी आखिरी पहर का आचरण है । उदासी में भरमाना, उदासी में अलसाना सुबह का संकेत है।

सुबह है अनिवार्य नींद के बाद का विस्तार । वही है स्वप्न का आकार । वह एक घनी विश्रांति का उपरांत है । धरा पर सर्वश्रेष्ठ प्रांत है।

अथाह शांति सुबह का पहला लक्षण है । अविरल शांति क्रांति का पहला चरण है । शांति के बग़ैर हर क्रांति एक अनाहुत मरण है । मरण है इसलिए अनर्थ । सुबह भाषा में सबसे बड़ा शब्द है और व्याकरण का सबसे घना अर्थ ।

परभाती के लिए तैनात खग वृंद उदास होकर रात भर कलपते नहीं । सोते हैं मन भर उदास घोसलों में ही । उदासी कभी कटती नहीं तड़फने पर । उदासी कभी मिटती नहीं सुबकने पर । नींद उदासी की काट है । स्वप्न ही उजियारे का बाट है ।

उदासी अपरिचित पहाड़ नहीं, मात्र मुरझाया-सा, पथराया-सा बरसाती नाला है । आता है एक वेग से और जाने कहाँ चला जाता है।

नाला कभी नदी नहीं होता । नाला क्षणमात्र है, कभी सदी नहीं होता । नाला कभी उज्ज्वल नहीं होता । नाला नहीं धवल होता । नाला बहुत चपल होता है लेकिन वहाँ कमल नहीं होता ।

नाला की उपस्थिति जीर्ण-शीर्ण, अवशिष्ट की अनुपस्थिति है ।अनुपस्थिति एक ज़रूरत है । अनुपस्थिति एक हकीक़त है । अनुपस्थिति ही नयी निर्मिति है ।

नदी में वह सिर्फ़ विसर्जित होना जानता है । वह नदी का शरणार्थी है । नदी स्त्री है इसलिए वह हर विसर्जन पर एक संभार है । शरण का आशरण। नाला पुरूष है इसलिए परुष भी । परुष ही पाषाण है । पाषाण ही उदास है । उदास नहीं होना है । पानी हैं हम प्यास नहीं होना है ।

जंगल और घर

जंगल से आगे घर । घर के पीछे जंगल । जंगल के नीचे जंगल । ऊपर भी जंगल-जंगल । जंगल से दूर घर । घर से समीप जंगल । घर से बाहर जंगल । जंगल बाहर घर । भीतर-भीतर

घर । जंगल बाहर-बाहर । घर में नहीं जंगल । जंगल में नहीं घर । घर है नहीं जंगल । जंगल भी नहीं घर ।

10 जून 2014

कवि क्यों मृत्यु वरे

कुछ ही देर पहले 'सतह के नीचे' मुझ तक पहुँची। दरअसल वह नहीं पहुँची । मैं उस तक पहुँचा । जैसे एक रेतीला मनुष्य जा पहुँचता है शीतल और शांत जल से लबालब किसी गहरे पोखर तक । यह हमारे समय के सबसे महत्वपूर्ण कवि-आलोचक और मार्गदर्शक रचनाकार आदरणीय विजेन्द्र जी की अनमोल कृति है ।

मार्गदर्शक इसलिए भी कि वे उम्र के 8 वें दशक में भी देह की तमाम सीमाओं को धता बताते हुए कवियों की नयी पीढ़ी को समय, संस्कृति और विशेषतः कविता का निःशुल्क पाठ पढ़ा रहे हैं, अनवरत और व्यवहारिक । विश्वास नहीं तो आप खुद फेसबुक पर स्थापित-संचालित उनके आश्रम में शिष्य-भाव से प्रवेश ले सकते हैं ।

मुझे नहीं पता निराला, नागार्जुन, शमशेर, केदारनाथ अग्रवाल प्रभृति हमारे युग-कवि ग़र आज होते तो क्या वे विजेन्द्र जी की भाँति स्वतः स्फूर्त होकर नवागत कवियों को इतना वक़्त दे रहे होते । क्योंकि बहुत से वे महान् कवि जो इस परंपरा में आज भले ही खुद को अग्रगण्य घोषित करते-कराते फिरते हैं, उनके नाम और धाम का आतंक एक युवा रचनाकार को उनसे बहुत विलग कर देता है । विजेन्द्र जी का कवियों की युवा पीढ़ी पर यह अहैतुक प्यार एक नये इतिहास जैसा ही है । फेसबुक पर उनकी सक्रियता काव्य-लेखन और अध्ययन के प्रति निष्ठावान् विद्यार्थियों के लिए जैसे श्रृषि-आश्रम का नया अभिकल्प ही है ।

तो 'सतह के नीचे' मात्र एक बड़े कवि की डायरी ही नहीं, कविता पर आस्था रखने वाले मुझ जैसे हर काव्य-समर्थकों के लिए काव्य-शास्त्र की एक निहायत ज़रूरी किताब है । उनके लिए भी जो स्वयं को 'सतह के ऊपर 'मानने का इल्म पाले बैठे हैं । लगभग ऐंठे हुए ।

फ़िलहाल डायरी के भीतरी पृष्ठों में प्रवेश करूँ, इस किताब के बारे में आपसे कुछ और बात करूँ, इससे पहले ही उनकी इस कविता की आभा में मैं इतना रससिक्त हो उठा हूँ कि लगभग मौन किन्तु ऊर्जा से भरा-भरा :

लगता है पात झरे
देख-देख दुख आस-पास आँख भरे

हैं अभी सूर्य, चन्द्र, नभ, जल, फूल और रज
कवि क्यों मृत्यु वरे ।

- कृति : सतह के नीचे (डायरी)
- लेखक : विजेन्द्र
- मूल्य : 300 रु.
- पृष्ठ : 207
- प्रकाशक : वांग्मय प्रकाशन, ई-776/6, लालकोठी योजना, जयपुर-15, मो.-9414041911

रचना

कवि जब-जब अकेला लिखता है, पाठक जब-जब अकेला पढ़ता; कविता भी तब-तब खुद को अकेली सुनती है और अकेले ही रचती है ।

इंडोनेशिया, अमेरिका और सरस्वती

विश्व के सबसे अधिक मुस्लिम आबादी वाले देश इंडोनेशिया ने अमेरिका को हिंदू देवी सरस्वती की एक प्रतिमा भेंट में दी है। इंडोनिशिया ने यह मूर्ति अमेरिका की राजधानी वाशिंगटन डीसी के लिए एक सांस्कृतिक उपहार के तौर पर भेंट में दी है। सरस्वती देवी की 16 फीट ऊंची प्रतिमा को वाशिंगटन में व्हाइट हाउस से महज कुछ दूरी पर स्थापित किया गया है। यह भारतीय दूतावास के सामने महात्मा गांधी की प्रतिमा के पास स्थापित की गई है। यह प्रतिमा एक कमल के फूल के ऊपर बनाई गई है। अभी इसका औपचारिक उद्घाटन किया जाना है। इस सांस्कृतिक उपहार के निर्माण की शुरुआत कालाकार आई न्योमैन सुदरवा के नेतृत्व में पांच बालनीज मूर्तिकारों ने की है ।

शाम की सोच

ज़िंदगी का हर पहलू रिश्तों से चलता-चलाता है । रिश्तों का दूसरा नाम ही ज़िंदगी है । जो रिश्तों को सही तरीक़े से जान-बूझ लेता है वह ज़िंदगी को ज़िंदगी बना सकता है अन्यथा यह ज़िंदगी बड़ी कड़वी हो जाती है । सारी सफलता-असफलता इन्हीं रिश्तों पर टिकी हुई होती हैं । ये रिश्ते ही इंसान को इंसान बनाते हैं । प्राचीन से प्राचीन साहित्य में रिश्तों को इतना महत्व दिया गया है कि इंसान अच्छी ज़िंदगी के लिए पेड़-पौधो, नदी-पर्वत, जीव-जंतुओं से भी एक रिश्ता बनाकर अब तक चलता आया है किन्तु अब रिश्ते को उतना तरजीह नहीं दिया जाता । यह ख़ुद अपने हाथ अपनी ज़िंदगी का गला घोंटने जैसा ही है ।

एक प्रश्न

व्यक्ति का नाम, उपनाम, मूलतः उसके जाति, धर्म-मज़हब का भी विज्ञापन होता है। जो वास्तव में जाति, धर्म के झगड़ों को ख़तम करना चाहते हैं क्या उन्हें इसे बदलने की शुरूआत करनी नहीं करनी चाहिए ?

कमजोर

'कम' के साथ जब 'ज़ोर' लग जाता है तब वह ज़रूर 'कमज़ोर' हो जाता है किन्तु यही उसकी ताक़त है ।

लोक-क्षति

छत्तीसगढ़ी गीतों को अपने अंदाज में गाकर अमर कर देने वाले विख्यात कलाकार (80 वर्षीय) शेख हुसैन के निधन के साथ ही उस विरासत का एक अध्याय दफन हो गया । इस कलाकार का नाम याद आते ही उनके गाये वे गीत याद आते हैं जो उनकी रेंज, अंदाज और सहज अदायगी का प्रमाण बने। जिस दौर में छत्तीसगढ़ी गीत प्रतिष्ठा को तरस रहे थे, तब शेख हुसैन ने निर्मला इंगले के साथ एकाधिक गीत गाए थे। बाकायदा उनकी आवाज में रेकॉर्ड जारी हुए थे। शेख हुसैन छत्तीसगढ़ के पहले कलाकार थे जिनका रेकॉर्ड जारी हुआ था। आकाशवाणी से जो आवाज सर्वाधिक सुनी गई उसमें शेख हुसैन ही मुख्य थे। उन्हें विनम्र श्रद्धांजलि...

8 जुलाई, 2014

पहचानिए ऐसे चिरकुटाधीशों को !

भट्टतोत सदियों पहले कह गये हैं :

दर्शनाच्च वर्णनाच्च रूढा लोके कवि श्रुतिः

नो दिता कविता लोके यावज्जामा न वर्णना ।।

मतलब 'दर्शन' और 'वर्णना' दोनों के योग से ही 'काव्य' का जन्म होता है । ज़ाहिर है ऐसी स्थिति में कवि-चेतना अनुभव को जो रूप देती जाती है वही 'वर्णना' है । बाहर काग़ज पर जो लिखा जाता है वह तो 'लिपिबद्ध करना' कहा जायेगा जो सृजन से अतिरिक्त कर्म है । यदि ऐसा नहीं है तो अपढ़ कबीर और अंधे सूर को स्रष्टा पद त्यागना पड़ेगा ।

यानी 'लिपिबद्ध' करते रहना 'काव्य' नहीं है ।

मेरा लब्बोलुआब सिर्फ़ इतना ही कि फेसबुक पर अधिकांश 'नर-नारी' (संभावनाशील भी कतई नहीं) 'लिपिबद्ध' हो रहे हैं, और कुछ 'नरपुँगव' ऐसे भी हैं जो उनकी कथित 'लिपिबद्धता' मात्र को ही 'काव्य' सिद्ध किये जा रहे हैं ।

इस प्रकार क्या यहाँ एक अशुद्ध और फूहड़ रोमानियत को विकसित नहीं किया जा रहा कि 'लिखो तो कुछ सही' यानी 'लिपिबद्ध' तो करो कुछ और परिणाम में 'क ख ग' का सही क्रम तक नहीं जान पाने वाले संवेदनहीन और फटाफटप्रिय 'नर-नारी' ठीक दूसरे क्षण से 'कवि' ही नहीं 'काव्याचार्य' होने के रूतबे से आप को गुरेरने पर आमादा होने लगे हैं ।
पहचानिए खुद को, ऐसे 'चिरकुटाधीशों' को और उनकी 'चिरकुटई' को भी.....

खेत और बाज़ार

गाँववाले दादा जी हैं कि खेत के प्याज को 5 रूपये में भी बेच कर दुःखी नहीं होते और शहरवाले पोते हैं कि उसी प्याज को बाज़ार से 35 रूपये में भी ख़रीद कर सुखी नहीं होते ।

धर्म का अनुभव

लिंकन कभी भी धर्म के बारे में चर्चा नहीं करते थे और किसी चर्च से सम्बद्ध नहीं थे। एक बार उनके किसी मित्र ने उनसे उनके धार्मिक विचार के बारे में पूछा।

लिंकन ने कहा – "बहुत पहले मैं इंडियाना में एक बूढ़े आदमी से मिला जो यह कहता था 'जब मैं कुछ अच्छा करता हूँ तो अच्छा अनुभव करता हूँ, और जब बुरा करता हूँ तो बुरा अनुभव करता हूँ । यही मेरा धर्म है ।"

19 जुलाई, 2014

माँ की आँखों में ईश्वर

आज बहुत दिनों के बाद दिल्ली के वरिष्ठ रचनाकार प्रकाश मनु और चर्चित कथाकार गीताश्री से मिलने बतियाने का अवसर भी मिला।

प्रकाश मनुजी को पढ़ा बहुत था, सुना पहली बार : वे अपनी रचना प्रक्रिया पर विस्तार से बोल रहे थे । इतना सरल जितना कोई बच्चा हो । सच भी है - बिना बच्चा बने बाल रचना लिखी भी नहीं जा सकती । बच्चों को सिखाया कम, उसने सीखा अधिक जी सकता है ।

उन्होंने प्रतिभागी बच्चों से पूछा - ईश्वर क्या है ? कैसा होता है ? कहाँ होता है ? किस तरह होता है ?

जब वे पहले दिन स्कूल से लौटे और माँ को बताया कि स्कूल में उन्हें बहुत कुछ शब्द सिखने मिला तो अनपढ़ माँ की आँखें भर उठीं । माँ ने कहा कि बेटे मैं तो अक्षरों से दूर रही तुम कभी इससे दूर मत होना ।

श्री मनु ने आगे कहा - " मैंने उस समय माँ की आँखें देखीं । सच कहूँ उसके बाद मैंने कभी ईश्वर को नहीं देख सका । हाँ, इसके बाद जब भी देखा उसे बच्चों की आँखों में ही देखा ।"

आभार तो नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली का, जिसके सौजन्य से एक बड़े साहित्यकार को उसकी संपूर्ण सारल्य रूप से देख सुन सका ।

नन्हें सितारों के बीच एनबीटी

नेशनल बुक ट्रस्ट की दो दिवसीय 'सतत् संवाद कार्यशाला', बिलासपुर, छत्तीसगढ़ में प्रारंभ । 300 से अधिक विद्यार्थियों को लेखन का गुर सिखाते लेखक गण - प्रकाश मनु, गीताश्री, सतीश जायसवाल, गिरीश पंकज, जयप्रकाश मानस, डा सुधीर शर्मा किशोर दिवसे, संदीप तिवारी, अहफाज रशीद और नेशनल बुक ट्रस्ट, दिल्ली के संपादक व राज्य प्रभारी, पुस्तक उन्नयन अभियान, छत्तीसगढ़ ललित लालित्य एवं अन्य लेखक गण । आत्मीय सहयोग - दक्षिण पूर्व मध्य रेलवे, बिलासपुर ।

7 सितंबर 2014

रचना की छननी

कवि के लिए ठीकठीक अपनी मौलिकता को पाना- बहुत कठिन काम है । यानी रचना का संपूर्ण केवल कवि का ही होकिसी और कवि, लोक या परंपरा का कुछ भी न हो । न भाव, न , भाषा न शैली न ही शिल्प । मौलिकता पर हिंदी के सुप्रतिष्ठित कवि विनोद कुमारशुक्ल जी एक रोचक प्रसंग सुनाते हैं –

एक बार क्या हुआ कि लिखते लिखते भवानी प्रसाद मिश्र की ये पंक्ति-'मैं गीत बेचता हूँ' मेरी कविता में आ गई । तो मेरे चचेरे बड़े भाई ने मुझसे कहा कि ये तो भवानी प्रसाद मिश्र की कविता की पंक्ति है ये तुम्हारे में कैसे आई । और वो कुछ नाराज़ भी हुए तो मुझे बहुत दुख हुआ ।

मुझको चोरी से बहुत डर लगता था । संयुक्त परिवार में रहते थे । वहाँ हर किसी की चीज़ इधर से उधर हो जाया करती थी । हम लोग चूंकि आश्रित थे तो हर बार ये लगता था कि कहीं कोई

ये न सोच ले क्योंकि परिवार में लोगों के पास अच्छी चीज़ होती थी, अच्छे खिलौने होते थे । दूसरे मेरे सारे चाचा काफी संपन्न थे । तो मेरे लिए बड़ी मुश्किल होती थी तो मुझे चोरी से बहुत डर लगता था ।

जब अम्मा ने उस दौरान कहा कि कुछ कर क्यों नहीं रहे हो तब फिर मैंने यही कहा कि मैंने एक कविता लिखी, लेकिन न जाने कहां से उसमें भवानी प्रसाद मिश्र की कविता की पँक्ति आ गई, मैं तो नहीं जानता कि ये कैसे आ गई ।

'मैं गीत बेचता हूँ' ये बहुत लोकप्रिय कविता थी । इन सब चीज़ों में अपनी याददाश्त में, अपने अंदर बस जानेवाली रचनाओं के बाद में अपनी रचनाओं को पाना बड़ा कठिन काम था । तब मैंने अम्मा से कहा कि फिर मैं क्या करूँ ?

अम्मा ने मुझसे ये कहा कि "देखो अपनी छननी भी बनाओ । जैसे हम चाय बनाते हैं तो चाय की छननी होती है, आटे की छननी होती है, मैदे की छननी होती है, इसी तरह अलगअलग चीजों - की छननी होती है । तुम भी अपने लिखने की छननी बनाओ कि तुम्हारा लिखा ही तुम्हारे पास में रहे । दूसरों का लिखा तुम्हारे पास में न आए ।"

कमल और राजकमल में फ़र्क़

कमल होने और राजकमल होने में जो फ़र्क़ होता है, उसे मैं आज पहली बार समझा। यूँ तो कमल बहुत दिनों से छत्तीसगढ़ के ताल-तलैयों, पोखरियों, बड़े-बड़े बंगलों के लॉन में खिलता हुआ दिख रहे हैं पर उसकी आभा से मैं न तो अचंभित था, न ही उसकी शोभा से ।

अक्सर ऐसा सोचते वक्त मेरी मिट्टी से उठकर एक कहावत मुझे घेर-घेर लेती है - न गंध न बास । यानी अकारज । यानी कमल होकर भी सेमल जैसा ।

हमारे जैसे उन सभी फक्कड़ों के लिए कमल से क्या मोह, जो लक्ष्मीकांत या विष्णुकांत बनने के बनिस्पत शिवदास बन कर मुक्तिमार्ग तलाशते रहे हैं, और जिन्हें अकिंचन, उपेक्षित धतूरे का धवल पुष्प ही अतिप्रिय हो !

इस मायने में राजकमल होना तो और भी नकारात्मक होता । क्योंकि कमल के साथ राज जुड़ा है । पर राज जुड़ा है तो और भी अकारज नहीं अपितु सच्चे मायनों में श्रेष्ठ भी हो सकता है। दरअसल यथा नाम तथा गुण होता नहीं, व्यक्ति को अपने गुण को रचना ही होता है, तभी वह नामानुकूल होता है । बिना रचे गुणशेखर भी गुणहीन बन जाता है ।

और आज राजकमल सच्चे मायनों में फिर से श्रेष्ठ साबित होते दिखा । और इस राजकमल के श्रेष्ठ होने का कारण राजकाजी कमल वाले लोग नहीं, सिरिफ़ एक ऐसा शख़्स है जो आज भी अपने पुराने दलदल और वहाँ से राजकमल होने की यात्रा को भुलाना नहीं चाहता । जो अपनी श्रेष्ठता के बाद भी संवेदना के प्रत्येक हक़दार को उसका सम्मान देने में सर्वाधिक विनम्र होकर अपनी ऊँचाई के सम्मुख उसे और अधिक कोमल बना देता है । और यह लफ़्फ़ाज़ों की भाषा में प्रबंधन हो तो हो, बौद्धिक शब्दावली में शुद्ध सांस्कारिक प्रबोधन ही है ।

मैं बात अशोक माहेश्वरी की कर रहा हूँ । वही हैं जिनकी पहल पर पहली बार एक लय और एक मंच में 9-9 दिन तक छत्तीसगढ़ की राजधानी रायपुर में देश की विभूतियों को याद किया जा रहा है, उनको नये संदर्भों में देखा जा रहा है। यह एक पिछड़े किन्तु प्रखर राज्य की अस्मिता को जगाने की दिशा में सर्वथा प्रथम पहल है ।

आज हिन्दी के प्रथम उपन्यासकार जगन्मोहन पर व्यापक विमर्श हुआ । इस आयोजन में पहुँचकर अशोक वाजपेयी की वह उक्ति आज बरबस याद आ गई जो उन्होंने प्रमोद वर्मा स्मृति संस्थान के मंच से कुछ साल पहले कहा था - “दिल्ली दर्प दमन होना ही चाहिए ।”

कल हिन्दी के प्रथम कहानीकार माधवराव सप्रे पर व्यापक बात होगी ।

और इसी क्रम में आने वाले 9-9 दिनों तक सरस्वती के संपादक पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी,

छायावाद के जनक कवि मुकुटधर पांडेय, महात्मा गांधी के शब्दों में उनके 'गुरु' कहलाने वाले कवि पंडित सुन्दरलाल शर्मा, द्विवेदी युग के ख्यात निबंधकार मावली प्रसाद श्रीवास्तव, छत्तीसगढ़ जैसे प्रशासकीय राज्य के जन्मदाता लेखकों में अव्वल हरि ठाकुर आदि पर राष्ट्रीय स्तर पर चर्चा होगी ।

इसी क्रम में राजनांदगाँव में विश्व प्रसिद्ध कवि मुक्तिबोध जी पर भी । ऐसी कार्ययोजना हमारे राज्य के संस्कृति के राजकीय उत्तरदायियों / विद्वानों को भी कभी सूझी हो, याद तो नहीं आता । पर आज राज्य निर्माण के 11-12 साल बाद यह संभव हो पा रहा है ।

लेकिन श्रीकात वर्मा और प्रमोद वर्मा जैसे विभूतियों को इस सूची में कहीं नहीं रखा गया है, जो बुनियादी तौर पर रहस्यात्मक है ।

इस सबके बावजूद आत्मीय संतोष इस बात पर कि वामपंथियों के प्रकाशक की उपाधि से नवाज़े जाने वाले अशोक माहेश्वरी के आयोजन में पहली बार एक दक्षिणपंथी तेजतर्रार संस्कृति मंत्री ने खुले मन से कहा - हम विचारधारा के द्वंद्व से मुक्त होकर राज्य के लेखकों का आदर्य चाहते हैं । पता नहीं इस प्रासंगिक उदारता के पीछे जादू किसका है ? बदलते समय का ? या अशोक माहेश्वरी का ? समय आने पर ही समझ में आयेगा ।

फ़िलवक़्त सो जाने का इशारा कर रही हैं मेरी दोनों पुतलियाँ !

कृपया रचनाकार को मेल भेज कर अपने विचारों से अवगत करायें